P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-5* ISSUE-5* August - 2020
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

समकालीन प्रयोगधर्मी उपन्यासों का रूपांकन

Design of Contemporary Experimental Novels

Paper Submission: 12/08/2020, Date of Acceptance: 25/08/2020, Date of Publication: 26/08/2020

मुकेश कुमार
सहायक आचार्य,
हिन्दीविभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,कैराना,
उत्तर प्रदेश,भारत

सारांश

नए तथ्य एवं सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयोगधर्मी उपन्यास कारों ने एक नवीन शिल्प को रचा। इसमें परंपरागत एवं शास्त्रीय शिल्प की सीमाओं का अतिक्रमण कर अन्य विधाओं के शिल्प को रचनात्मकढंग से एक नया रूप दिया गया। मनुष्य का जीवन केवल गद्य में ही नहीं पद्य संगीत आक्रोश, अवसाद एवं अलाप में भी होता है। प्रयोगधर्मी उपन्यासों में अभिव्यक्ति के लिए कविता का सहयोग लिया गया जिसके लिए नए–नए बिंब प्रतीक एवं लय का सर्जनात्मक प्रयोग किया गया। वास्तव में समकालीन प्रयोग धर्मी उपन्यासों में शिल्प एवं शैली अपनी संपूर्णता एवं सर्वाभौमिकता का में अभिव्यक्त हुआ। प्रयास किया है कि मनुष्य के जीवन में अतंर्तम में छुपे सत्य को कविता किस्सा संगीत एवं आलप जैसे औजारों के माध्यम से सत्यता के साथ व्यक्त किया जा सके। इसलिए प्रयोगधर्मी उपन्यासों में कथा को अभिव्यक्त करने के लिए नवीन शिल्प की सफल परिकल्पना सफलीभूत हुई है।

Experimental novalist cars created a new craft to express new facts and truths. The crafts of other genres have been creatively redesigned by transcending the boundaries of traditional and classical crafts. The life of a man is not only in prose, but also in the music of poetry. Poetry was used for expression in experimental novels, for which new image, symbols and rhythms were used creatively. They have tried to express the truth hidden in the existence of human beings through the tools like poetry, music and alaap. Therefore, the successful concept of new craft to express the story in experimental novels has been successful.

मुख्य शब्द :आत्माभिव्यक्ति, अन्वेषी,आत्मसात, इष्ट, सत्य, भाषा, फलप्रद प्रगतिवाद, फॉर्म, अंतस्तम, जटिल, बिंब, कल्पना, कंटेंट, कथ्य, पूर्वग्रह, संवाद, यंत्रणा, रोशनी, स्याही अतिभावुकता, भँवर अविष्कार, उपन्यास,ढांचा, प्रक्रिया, अव्यवस्थित, अंग्रेजी, रूपांकन।

Soul Expression, Exploratory, Assimilated, Favored, Truth, Language, Fruitful Progressivism, Form, Ultimate, Complex, Image, Imagination, Content, Narrative, Prejudice, Dialogue, Torture, Light, Ink Superfluity, Whirlpool Innovation, Novel, Structure, Process, Disorganization, English, Design.

प्रस्तावना

''बारिश हो रही है और बबुआ भींग रहे हैं – सिर पर भूसा के तिनके, चेहरे पर दाँत चियारे खेत, मुद्धों में घौरा और सोंकना के खुर, झोले में उधार के आटे की पूड़ियाँ – भींग रहे हैं।''[1]

''स्नानादि के निवृत होकर ऋषिकुमार रैक्व वृद्धा की कुटिया में गये और पहली बार माँ के हाथ का बना भोजन ग्रहण किया। ...भोजन में अकृष्ट-पच्च नीवार के उबाले हुए दाने थे और साथ में उसी प्रकार के भुने हुए कुछ कन्दमूल, जिनमें थोड़ी मात्रा में लवण मिलाया गया था।''[2]

''रघुवर प्रसाद और सोनसी प्रेम का समय पा रहे थे। सोनसी एक-एक क्षणों को गूँथती और रघुवर प्रसाद सोनसी के थोड़े-थोड़े निर्वस्त्र शरीर को अलंकृत करते। सोनसी पूरी अलंकृत होकर निकली थी। रघुवीर प्रसाद कुछ बोलते थे पर सोनसी उनको कल्पवृक्ष की तरह सुन रही थी। वृक्ष को सुनने में

उसने वृक्ष की फुनगी को, एक-एक पत्ती को, हरे फलों को सुना। एक हरे फल का उसने पकना सुना। उसने फल का मीठा होना सुना।''[3]

भाषा एक माध्यम के साथ-साथ 'भाव' भी है जो स्वयं को अपनी भाषा में व्यक्त करती है। चित्र या स्केच के रूप में वह बिना कुछ बोले सबकुछ कह देती है, जो प्रकृति सुनना चाहती है। 'बबुआ भींग रहे हैं' एवं उनके 'चेहरे पर दाँत चियारे परती खेत' में कहाँ कुछ अवकाश मिलता है कि पाठक कुछ सोचे-विचारे। वह तो बबुआ के चेहरे में ऐसे खो गया है जैसे लगता है कि वह चेहरा बबुआ का न होकर खुद उसी का है। रचनाकार तो समीक्षक के लिए कुछ छोड़ता ही नहीं कि आलोचक इसके इर्द-गिर्द मँडराकर कुछ कतर-ब्योंत कर सके। इसे ही हम भाषा का पूरा उपयोग कहते हैं। यहाँ रचनाकार ने जितना चाहा उससे ज़्यादा कह गया और इतना ज़्यादा कि उसके बाद केवल मौन बचता है। इसमें बिम्ब, प्रतीक एवं रूपक का अद्‌भुत उपयोग रचनाकार ने किया है। केवल दो पंक्तियाँ पढ़ने मात्र से ही भारतीय ग्रामीण युवक की तस्वीर अपनी **पूर्णता** में बन जाती है। यहाँ 'पूर्णता' से आशय अतीत, वर्तमान एवं भविष्य से है, उससे भी अधिक हम उसके इतिहास को जान जाते हैं। प्रकृति एवं मनुष्य के रिश्ते के प्रति एक नयी समझ बनती है।

'माँ के हाथ का बना भोजन' और 'भोजन में अकृष्ट-पच्च नीवार के उबाले' में बबुआ हैं लेकिन काशीनाथ सिंह के बबुआ से अलग हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के बबुआ है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में बहुत पहले आ चुके थे जो एक पौराणिक ऋषि हैं। काशीनाथ सिंह के बबुआ तो ग्रामीण युवक के रूप में कासी के कॉलेज में पढ़ने की लालसा लिए आए छात्र हैं। छात्र 'रैक्व' भी हैं, लेकिन जीवन-संघर्ष से एकदम दूर किसी वन-प्रातंर के एकांत में पड़े रत कर जगत एवं जीवन के रहस्य को समझने का प्रयास करने वाले। लेकिन जीवन एवं जगत् की गुत्थियों को सुलझाने के क्रम में वे न तो जगत् को समझ पाये और न ही जीवन को, रह गए व्यवहारिकता में ठस अनाड़ी। काशीनाथ का बबुआ व्यवहार तो जन्म लेते सीख गया था, अब आया है काशी में 'शास्त्र' का ज्ञान ग्रहण करने। 'रैक्व' शास्त्र में पारंगत हो गया है लेनिक व्यवहार में शून्य। अब आया है माँ की कुटिया में माँ को समझने एवं जगत को आँखों से देखने के लिए।

उपर्युक्त विश्लेषण से आशय यह है कि एक ही भाव स्थिति को अलग-अलग शब्द-संयोजन (भाषा) द्वारा कैसे प्रस्तुत किया गया है। जहाँ वहीं द्विवेदी जी शुद्ध तत्सम शब्दावली को अपनाया है। वहाँ काशीनाथ सिंह ने देशज (या भदेसपन) को आधार बनाया है। भाषा में बढ़ता भदेसपन भी आज की रचनाधर्मिता की पहचान का ही एक हिस्सा है। उदाहरण के लिए तीसरे उद्धरण की भाषा देखें तो, उपर्युक्त दोनों से अलग है। यहाँ पाठक एवं समीक्षक को पूरी गुंजाइश मिलती है इसके रेशा-रेशा को खोलने के लिए। लेकिन यहाँ व्यापकता है। अर्थ की सीमा नहीं है, हम जहाँ तक कल्पना कर सकते हैं वहाँ तक या उससे भी आगे इसका अर्थ खुलेगा, बस हमारी पाठकीय क्षमता बहुविधि होनी चाहिए। यह लेखक की चुनौती है। इसने चार वाक्य में 'सोनसी' का नाम पाँच बार एवं रघुवर दास का नाम तीन बार लिया है। रचनाकार 'सोनसी' के लिए वह, उसने इत्यादि विशेषण का उपयोग कर सकता था, लेकिन उसने नाम लेना ही उचित समझा। यहाँ 'सोनसी' नाम पाँच विविध भावों के लिए प्रयुक्त है। पहली सोनसी, खुद में सोनसी है, अपने नाम के साथ। दूसरी सोनसी अपने पति की सोनसी है, तीसरी 'सोनसी' अपने घर-परिवार की सोनसी है, चौथी 'सोनसी' समाज की तथा पांचवीं प्रकृति की यानी अपने आदम रूप की, जहाँ वह प्रकृति की अंग थी। प्रकृति में उसका पति रघुवर दास कल्पवृक्ष है और उसे वह सुन रही है। उस सुनने के क्रम में वह उसके पूरे अस्तित्व से आदम परिचय प्राप्त करती है – फुँनगी, पती.....। उसने पति के साथ प्रकृति को सुना, जन्म की प्रक्रिया को भी जाना। हरा फल, उसका पकना एवं रसमय होकर मीठा होने का एक अर्थ है। आदम रूप में प्रकृति के बीच वह पुरुष (रघुवर दास) के सहयोग से गर्भ धारण करती है, गर्भ को अपने उदर में पकाती है और उस अनागत की मीठी ध्वनि सुनती है, जो आनेवाला है। यहाँ काल को रचनाकार अतिक्रमित करता है। आदम युग से आज के मनुष्य तक के लम्बे अंतराल को वह अपनी भाषा के अद्‌भूत प्रयोग से मिटा देता है। काल सिमट कर एक साथ गुँथ जाता है।

यह नयी प्रयोगधर्मी भाषा सम्प्रेषण की दृष्टि से बेजोड़ तो है, साथ ही पात्रों की निजी अस्मिता को सुरक्षित रखती हुई यथार्थ के बीच से उभरती और यथार्थ का एक-एक रेशा उजागर कर देती है। नामवर सिंह भाषा को अनुभव से जोड़ते हैं तथा उसका विस्तार अनुभव के विस्तार से जुड़ा है – ''व्यक्ति का अपना भाषा-संसार ही अनुभव का संसार इसलिए अनुभव-संसार के विस्तार के लिए भाषा संसार का प्रसार अनिवार्य है।''[4]

किसी भाषा की शक्ति उसकी बोध-शक्ति का प्रमाण है। रचनाकार का बोध जितना अधिक व्यापक एवं संवेदनशील होगा, भाषा उतनी ही अधिक समर्थ होगी। भाषा, भाव की अनुगामिनी होने के साथ-साथ भाव को भी पुष्ट करती है। यथार्थ एवं संवेदना ने उपन्यास के विषय, चरित्र तथा वर्णन बदल दिये हैं। फलतः वर्णन का माध्यम भाषा भी बदल गयी है। भाषिक परिवर्तन मूलतः चरित्र और चरित्र-रचना के मूल्यगत परिवर्तन से ही संबद्ध है। नये संवेदनों की जटिलता को वहन करने में प्रेमचंदकालीन भाषा एवं शिल्प असमर्थ हो गए थे। तात्पर्य यह है कि भाषा में प्रयोग सायास, सोच-समझ कर किया गया प्रयत्न है। इस नयी भाषा में प्रेरणा और भावना दोनों का ही नयापन है। प्रयोगधर्मी उपन्यासकारों ने अभिनव भाषिक अर्थवत्ता सृजित की है।

गद्य की भाषा को वांछित स्थल पर संगीत की लय का स्पर्श मिला है, जिससे भाषिक प्रयोग अकृत्रिम होने से बच गया है। 'इसने बदले हुए समर्थ संवेदन को नयी प्राणवत्ता, अर्थगंभीरता, उद्‌देश्यपूर्णता, विषयानुकूलता तथा पारदर्शी सांकेतिकता उपलब्ध कराई है।''[5]

कथा का संबंध वाचिक परम्परा से है। जहाँ कथा कही जाती थी, लिखी नहीं। कथा कहने के साथ उसे लय एवं तालबद्ध करके गाया भी जाता था। प्रयोगधर्मी उपन्यासकार उस परम्परा से अपने-आपको जोड़ता है। कृष्ण बलदेव वैद का मानना है कि उनके उपन्यासों को अगर ज़ोर से पढ़ा जाए तो वह संगीत मय हो जाता है। इनकी भाषा में संगीत का प्रयोग सर्तकता से किया गया है। संगीतमय उपन्यास मुनष्य की आत्मा को स्पंदित करता है, उसे वह अपनी रूह से पढ़ता है, एवं अपने को प्रकृति (आदिम) से जोड़ता है –

''एक पहर बीतल जे दुई पहरे, जे तेसरा पहर हो-ओ,
रात कटे सुन्दरि छाती कुटे दैवा आँगन में।''[6]

''सारा संसार तुम्हारे स्नेह का भिखारी है।
प्रभो, जो तुम्हें नहीं देख पा रहे हैं, उन्हें दृष्टि दो!''[7]

''पीना हराम है न पिलाना हराम है,
पीने के बाद होश में आना हराम है –
चीयर्स।''
X X X
सिवाय बाद-ए-देरीना और बुत-ए-नौख़ेज़,
कभी ख़ुदा से मैं कोई दुआ नहीं करता।''[8]

यहाँ तीन स्थितियाँ है। मनोभाव की। पहले में प्रकृति, घर, समय, लोक, परलोक को आधार बनाकर प्रेयसी के विरह का गीत संयोजित है तो दूसरे में मनुष्य, देवता बन गया है और उसकी मानवी प्रेमिका उससे प्रेम निवेदन कर रही है। तो तीसरी स्थिति में शराब की मस्ती है जहाँ अपने-आप को भूलने का प्रयास है।

ध्वनि से युक्त होने पर शब्द में नाद का सौन्दर्य उत्पन्न होता है और अपने अर्थ में शब्द व्यापक अर्थवत्ता की सृष्टि करता है। रचनाकार को जब भावों को अभिव्यक्त करने के लिए समर्थ शब्द नहीं मिलता है तो वह ध्वनियों को अपना सहयोगी बनाता है –

''एक दूसरे अन्याय का आरंभ होगा .....पुत्र। मेरे .....तुम्हारे समाज के अनु .....शासन से.....!'' तात अत्यंत कठिनाई से फिर और भी क्षीण स्वर में बोले, ''छाया को .. ...उसकी माता के .....स्वामी स्नेह का .....परिणाम। पुत्र .... ..मुझे खोकर तुम्हारे .....इस अन्याय का प्रायश्चित्त हो।''[9]

बीच-बीच में डॉट-डॉट यानी खाली स्थान, इसी खाली स्थान में पूरा अर्थ ध्वनित हो रहा है। शायद 'अनु.... शासन' को अनुशासन लिख देने से उस अर्थ की व्यंजना नहीं होती है जो हो रही है।

''.....गुड़ गुड़ गर्ड़र! भर-भर-भर! गर्ड़र-र्र-र्र! फट्र्ट-फट्र्ट-फर्र-टर-टर! अगला बुलड़ोजर चल रहा है। .. .रह-रहकर सूरज की रोशनी किर्र-र्र-र्र-रि। ...बेराग जोग कठिन उधो-ओ-ओ, हम ना कडरडब हो। हुँ-हुँ-अँ, ऊँ-य-हुँ-हुँ-हुँ-हुँ-ऊँ-ऊँ..... ।''[10]

ध्वनि एवं शब्द का यह समंजन अद्भुत है। इससे अर्थ की पूरी व्यंजना हो जाती है। रचनाकार अपने कहन को पूर्ण सजीवता से व्यक्त करता है। यहाँ शब्द, संगीत, ध्वनि, लोक मिल-सा गया लगता है। इसे गाया जाय तो गीत बन जाए, अभिनय किया जाय तो नाटक। यही इसका सामर्थ्य है।

कृष्णबलदेव वैद के उपन्यास में भाषा, केवल माध्यम भर नहीं, स्वयं में साध्य भी है। यहाँ भाषा शब्दों का संयोजन मात्र नहीं है, भाव है, स्वयं में कथ्य है। वैद के उपन्यासों में रचित भाषा दोहरी भूमिका एक साथ निभाती है – अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के रूप में। यही कारण है कि वैद के उपन्यासों की भाषा बेतरतीब, अनगढ़ एवं असंगत प्रतीत होती है। गोपाल राय तो इसे शाब्दिक तमाशा करार देते हैं – ''यह एक किस्म का शाब्दिक तमाशा है जिसके लिए सौ पचास रुपये का टिकट बहुत महँगा है।''[11] वैद भाषा-भंजक एवं भाषा-सर्जक दोनों है। टूटती भाषा, नई सर्जना को उद्बोधित करती है। गोपाल राय का इनकी भाषा को शाब्दिक तमाशा मानकर, इसे अप्रासंगिक घोषित करना, जल्दबाजी में बिना तैयारी के निष्कर्ष पर पहुँचने जैसा है। रमेश देव इनकी भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं – ''कथ्य की त्वरा से भाषा का तालमेल इतना जबरदस्त है कि भाषा अपने आप को दोहराती न बल्कि नई होती चलती है....वैद का भाषिक आयाम सहज एवं व्यापक है – हिन्दी अंग्रेज़ी एवं उर्दू के साथ अपनी मूल पंजाबी, जो उनकी अभिव्यक्ति का मिज़ाज रचती है, इसलिए कथ्य या कथा उनके उपन्यास में गौण-बहुत है और भाषा-वस्तु ही एक ही पूरे चरित्र की तरह, विचार की तरह है।''[12] वैद की भाषा अपने-आप में अद्भूत है। इसे न केवल हम पढ़ सकते हैं, बल्कि सुन भी सकते हैं, इससे लयबद्ध होकर शोर भरी दुनिया को संगीत की लय में आबद्ध करने की शक्ति है। दिक्कत एवं जटिलता तब उत्पन्न होती है, जब हम भाषा को मात्र शब्द के अर्थ के रूप में समझने का सतही प्रयास करते है। इनके उपन्यासों की भाषा को ''उसकी रूह से पढ़ो, उसकी राह से पढ़ो, उसकी रवानी से पढ़ो, चिह्नों से चिपककर नहीं, विरामों में ठहरकर नहीं, या पेरेंथिसेसों में उलझ कर नहीं.... भाषा उनके लिए भावकुता न होकर एक भाव-प्रवाह है'' इनकी भाषा, परम्परा को स्वीकार नहीं करती है। अपने अंदाज में बहती है। न तो कहीं से शुरू होती है और न ही कहीं समाप्त। ''पागलपन पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिये। भीतर के भेड़िये को भड़काओ। नीलम देश की एक मरियल मीरा पग घुँघरू बाँध नई सड़क पर राम खिलौने को लोहे की दुकान के पास पड़े एक घिनावने ढेर पर खड़ी टेलीफोन खड़काय रही हेलो डूडलवादी साहित्यकार वहशत का विवेचन ज़ोर गरम करो गोरी बोरियत बेगम विलायत सुधीर हो धरो कि मोक्ष मूत क्रोध निर्वाण नाद की नहरें साँझ बाँझ हरिजन प्रिय दर्शनी कैं-कैं काफी हाऊस धनी धन्य अभारतीय भाँग चूहे चित्रकारों के चित्रों में दिमागी धुँध अंगिया हीन लिंग लंगड़ी .... बेगाने महुभूतिये बादशाह यानी कि पागल पिया..''[13] उपर्युक्त लम्बा गद्य किसी निश्चित मुकाम से चलता नहीं और आगे समाप्त भी नहीं होता है। न तो कॉमा, और न ही पूर्ण विराम एवं अर्द्धविराम – बस भाषा बह रही है....। लेकिन किसी माइल स्टोन तक आने के लिए सिर्फ एक ही वाक्य कविता की तरह ध्वनित होता है – विमल, क्या कर रहे हो? कहाँ जा रहे हो।' ''बिमल,

क्या कर रहे हो'' और इसके बाद लगातार भाषा का एक पेंडोरा बाक्स खुलता है, जिसमें शब्द से बनते शब्द, वाक्य से टूटते वाक्य, तरह-तरह की मुद्राएँ अपनाते चले जाते है। इसे पढ़ कर चिढ़ एवं खीझ भी उत्पन्न होती है, लेकिन कुछ दूर आगे जाने पर हमें सकुन भी मिलता है। चिढ़, खीझ एवं सकुन इनकी भाषा एक साथ देती है, यहीं इसकी ख़ासियत है।

'नर नारी' उपन्यास की भाषा एक अलग मिज़ाज़ में रचित है। इसमें बाँझ माँ जी के ठेठपन एवं बेबाक़ी को बिन्दास अन्दाज में रचने के लिए लेखक मुहावरे, लोकोक्तियों, फिल्ली गाने की आधी-अधूरी पंक्तियों का प्रयोग किया है। ''औरत को मर्दों की कमी कभी नहीं, कहीं नहीं यह सच्ची बात अब। मैं अपने पैरों पर। मैं दिन भर आज़ाद अकेली वह दौरे पर हर शाम नया जोड़ा वह कहता इतने कपड़े बनी-ठनी देख अक्सर खुश होता था कहता था जो चाहो पहनों जो चाहो खाओ। ....भगवान मेरा साक्षी मैं उससे उसकी सेहत की प्रार्थना करती सोचती किसी दिन अचानक चमत्कार सुबह सूबरे उसे देखती शायद आज लेकिन नहीं वह कहता तू बेवकूफ़ अब कुछ नहीं होगा। यह कहते हुए कसी हँसता कभी रोता मैं कहती तो क्या हुआ मैं हूँ ना।''[14] कहीं-कहीं वैद की भाषा उलझन में डाल देती है। कहीं एक शब्द का वाक्य तो कहीं-कहीं केवल शब्द, निरंतर बिना रूके बहते शब्दों को सागर, जिसमें विराम, अर्द्धविराम, पूर्ण विराम या कोई चिह्न एवं योजक नहीं मिलता है। इस पर टिप्पणी करते हुए रणजीत साहा लिखते हैं – अर्ध विराम, पूर्ण विराम, व्याकरण और पद-न्यास की दृष्टि से आधे-अधूरे वाक्यों, सघन जटाज़ाल और कभी-कभी मुक्त कविता की तरह वाक्यों द्वारा खाज़ पैदा करने वाले संजाल पाठकों को तंग कर सकते हैं।''[15]

प्रतीक, रूपक, बिम्ब आदि कविता के अनिवार्य तत्त्व हैं, कविता बनती है इन तत्त्वों के सहयोग से। इनका उपयोग इसलिए किया जाता है जिससे 'कथन' प्रभावशाली बन सके। प्रभावशाली होने से तात्पर्य है – व्यापकता, अर्थ की बहुरूपता यानी अर्थ की असीमित सम्भावनाएँ, तीक्ष्णता, गूढ़तम यथार्थ की समझ तथा भाषा में लाक्षणिकता एवं चित्रात्मकता से।

आज़ादी के बाद जीवन में जटिलता तथा व्यापकता आने के कारण मानवीय अन्तर्मन के गूढ़तम यथार्थ को व्यक्त करने में भाषा की अभिधा शक्ति समर्थ नहीं रही। इसलिए रचनाकारों ने अभिव्यक्ति के लिए भाषा की लक्षणा एवं व्यंजना शक्ति का उपन्यास में उपयोग किया। उपयोग न केवल काव्य में बल्कि गद्य रचनाओं – कहानियों एवं उपन्यासों में भी किया। ***'उसका बचपन'*** उपन्यास में इसी शक्ति का उपयोग इसके रचनाकार कृष्णबलदेव वैद ने किया है। इसमें काव्य एवं उपन्यास के तत्त्व आपस में घुले-मिले प्रतीत होते हैं। गद्य एवं पद्य की भाषा में भी अंतर कम जान पड़ता है। काव्यात्मक ढंग से जब ऐसे एकाधिक उपन्यास लिखे जाने लगे तो अ कविता के कवि गद्य की भाषा में भी कविता लिखने लगे।

izrhd

प्रतीक ऐतिहासिक तथा जातीय चेतना का प्राणमय संवाहन है। प्रतीक के केन्द्र में परम्परागत मानव-समाज तथा उसके समृद्ध अनुभव होते हैं। एक तरह से प्रतीक एक अर्थ समूह है जो एक बार स्थिर होकर अपने प्रति अन्यान्य अर्थों को आकृष्ट करता है। डॉ. नागेन्द्र का कहना है कि – ''प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है। जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है।''[16] आचार्य शुक्ल जी का कहना है कि ''प्रतीक सर्वदा अपने से इतर संकेत देता है।''[17] प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार ''विचार, भाव या वस्तु के स्थान पर उसका कोई प्रतिनिधान प्रतीक है।''[18] प्रतीक का अर्थ समाज द्वारा रूढ़ किया जाता है तथा जो नया अर्थ लेखक उसमें सम्प्रेषित करता है, उसमें भी सामाजिक स्वीकृति किसी न किसी रूप में अवश्य रहती है।

रचनाकार अर्थ का विस्तार अतीत (इतिहास) एवं वर्तमान के गूढ़तम परिस्थितयों में छुपे यथार्थ को अभिव्यक्त करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करता है। साथ ही मानवीय अर्न्तभावों को कम से कम शब्द में सटीक ढंग से उद्घाटित करता है। ***'मछली मरी हुई'*** उपन्यास में 'कल्याणी' और 'निर्मल पद्मावत' के मनोभावों को व्यक्त करने में उपन्यासकार प्रतीकों का प्रयोग बखूबी करता है। कल्याणी के अलमारी में वस्त्रों के पीछे सिरविहीन नरकंकाल एकाधिक अर्थों की सृष्टि करता है। निर्मल पद्मावत ने देखा – ''साड़ियों पेटीकोटों और स्कर्टों की कतारों के पीछे, आलमीरे की दीवार से लगा एक नरकंकाल झूल रहा है। सिर का हिस्सा नहीं है। सिर्फ बाँहों, टाँगों और फेफड़ों की हड्डियों का जाल है। सिर नहीं है। चमड़ा नहीं है। .....आदमी के शरीर का फ्रेम है। आदमी नहीं है।''[19] निर्मल पद्मावत पूर्ण आदमी होते तो, कल्याणी उन्हें अपमानित नहीं करती, वे जीवित नरकंकाल हैं कल्याणी के लिए, नरकंकाल में निर्मल को अपना वास्तविक असहाय रूप दिखालाई पड़ा, जिससे त्रस्त होकर उस काल में उसके पौरुष ने उसका साथ नहीं दिया। उसी नरकंकाल ने कल्याणी के अत्यंत भौतिकावादी बना दिया है। जीवन की वास्तविकता को समझने के कारण ही वह समाज द्वारा आरोपित नैतिक मूल्यों को नकार कर स्वच्छन्द आचरण करती है। उपन्यास का शीर्षक भी एक प्रतीक है। कुण्ठित जीवन ही मृत्यु है। जल के अभाव में मछली निष्प्राण हो जाती है और जीवन अर्थात् जल से सप्राण बनता है। इसमें लगभग सभी स्त्री एवं पुरुष पात्र किसी न किसी प्रकार की यौन कुण्ठा से त्रस्त हैं, जिसके कारण वे आनी स्वभाविकता खो देते हैं। जीवन (जल) मिलते ही, सारी कुण्ठा खत्म हो जाती है। सभी मछलियाँ जीवन पाकर जीवित हो उठी यानी अप्राकृतिक आचरण से मुक्त होकर सहज मानव जीवन प्रवाहित होने लगा।

'मुर्दाघर' उपन्यास में उपन्यासकार ने प्रतीकों के माध्यम से यथार्थ के विविध स्तरों को सशक्त तरीके से चित्रित किया है। भूख, गरीबी, उत्पीड़न की शिकार असहाय, निर्बल स्त्री को रचनाकार ने पक्षी के माध्यम से

इस प्रकार दिखाया है – ''कोने में दुबकी एक चिड़िया मोड़ती है गर्दन .....घूम-घूम कर देखती है चारों तरफ ..... कुछ दिखाई नहीं देता अंधेरे के सिवा। कहाँ छूट गया आसमान। कहाँ गया.....घोंसला।''[20] इसमें एक पागल आदमी, जो लगातार कूड़े के ढ़ेर में कुछ न कुछ तलाशता रहता है, प्रतीक है। इसी प्रकार अंधेरे में नंगे बदन अपना एक मात्र वस्त्र धोने की काशिश करता आदमी, समाज की गंदगी दूर करने की कोशिश करते हुए इंसान का प्रतीक है – ''आदमी ....नंगा .....हजारों साल हो गये ....इसी तरह। धो रहा है एक गंदा कपड़ा....। साफ़ नहीं होता।[21] उपन्यास का शीर्षक ***'मुर्दाघर'*** अपने आप में प्रतीक है। इसे रचनाकार उपन्यास के अंत में स्वयं उद्घाटित करता है – ''घूम कर देखती है मैना ....एक मुरदे को। फिर चल पड़ते हैं तीनों। गुज़रने लगते हैं उस दुनिया से ...जहाँ चारों तरफ ....बिखरे हुए हैं – मुरदे।[22] यही दुनिया है। जो शोषक है, समर्थ है, जिन्दा है। जो हड्डी तोड़ श्रम करते हैं – भूखे हैं। जिन्दा लाश हैं।

विनोद कुमार शुक्ल लिखित ***'दीवार में एक खिड़की रहती थी'*** उपन्यास कमोबेश प्रतीकात्मक है। कोई बात सीधे-सीधे (अभिधा) नहीं कही जाती है। हाथी, साधु, साइकल, स्कूटर, रघुवर दास, सोनसी सब सामाजिक प्रतीक हैं। साधु एवं हाथी के प्रतीक को देंखे तो – 'हाथी' रघुवरदास की 'इच्छा' का प्रतीक है। उनकी आकांक्षाओं का प्रतीक है।

''पत्नी ने कहा, – ''खिड़की से हाथी नहीं जा सकेगा।''

''हाँ'' रघुवर प्रसाद ने कहा।

पत्नी ने सुना, ''मन की खिड़की है। हाथी क्यों नहीं जाएगा।''

पत्नी ने कहा, मन की खिड़की और बड़ी होती तो ठीक था। मन का हाथी बड़ा है।''[23]

'साधु' मानवीय विकास की एक ख़ास अवस्था का प्रतीक है। साधु अरण्य में रहता है। अरण्य में निरंतरता एवं वैसी नियम-क़ानून नहीं होते जैसे ग्राम में होता है। दोनों के जीवन-परिवेश एक-दूसरे के विपरीत हैं। लेकिन ग्राम मे जब संकट उपस्थित होता है तो साधु ही उसे हल करता है। ग्राम निवासी रघुवर प्रसाद की एक समस्या का समाधान 'साधु' हाथी लाकर करता है।

बिम्ब

'बिम्ब' वस्तुतः क्या होता है। इसका आशय रचनाकार द्वारा गद्य या पद्य में विन्यस्त 'शब्द चित्र' के माध्यम से समझा जाता है। बिम्ब एक तरह से 'शब्द चित्र' होता है। प्रभाकर श्रोत्रिय इसे 'कविता की तीसरी आँख' कहते हैं – '' 'बिम्ब' काव्य भाषा की तीसरी आँख है जो 'पर्युत्सुक' दृश्य-संवेदन उपस्थित करती है।''[24] कविता में इसका प्रयोग जीवंतता एवं सजीवता के लिए किया जाता है। नित्यानंद तिवारी इसे आज के अनुभव की जटिलता को सजीव ढंग से व्यक्त करने के लिए आवश्यक मानते हैं – ''आधुनिक कवि का दृष्टिकोण सौन्दर्यवादी की अपेक्षा जीवनवादी अधिक है। यही कारण है कि कविता में बिम्ब का महत्त्व बढ़ गया है।''[25]

''बारिश हो रही है और बबुआ भींग रहे है – सिर पर भूसा के तिनके, चेहरे पर दाँत चियारे परती खेत, मुछों में घौरा और सोंकना के खुर झोले में उधार के आटे की पूड़ियाँ – भींग रहे हैं।''[26]

उपर्युक्त पंक्तियाँ ***'अपना मोर्चा'*** उपन्यास से उद्धृत है। अगर इसे निम्न ढंग से लिखे तो हम इसे कविता के रूप में भी पढ़ सकते हैं –

'बारिश हो रही है,
और बबुआ भींग रहे हैं,
सिर पर भूसा के तिनके,
चेहरे पर दाँत चियारे परती खेत,
मुछों में घौरा और सोंकना के खुर,
झोले में उधार के आटे की पूड़ियाँ,
भींग रहे हैं.....।'

यह पूरा शब्द-चित्र है – उत्तर-भारत के ग्रामीण और ग़रीब समाज के युवक का। इसमें प्रतीक, बिम्ब रूपक का प्रयोग बहुत सहज एवं सरल ढंग से किया गया है। अगर रचनाकार इस चित्र को गद्य की भाषा में व्यक्त करता तो, उसमें इतनी मार्मिकता एवं गंभीरता नहीं आती। बारिश में भींगने के बाबजूद, बबुआ का चेहरा परती खेत के समाजन सूखा, रसहीन, उदास एवं भावहीन है। यह कैसी विसंगतिपूर्ण विडम्बना है?

बिम्ब से कथ्य का सौन्दर्य बढ़ जाता है, अर्थ की अनेकानेक परते खुलती हैं। ***'कसप'*** में उल्लेखित एक वर्ण-चित्र देंखे – ''मुझे अच्छे नहीं लगते ये दुद्दू, ये बुबूआ? लफड़-लफड़-फदड़-फदड़। ....क्याप चोप्प – जैसे दिखते हैं। .....मुझे तो ये भले लगते हैं नहीं। लेकिन क्या हुआ ना, जब उस दिन मुझे कुतकुताली दे चुका तब उसका अँगूठा मेरे इस बुबूआ पर रखा रह गया। और जब मैं नहाती हूँ, रोज वही बात याद आ जाती है। मैं भी वैसे भी एक अगूँठा रख देती हूँ उस पर। .....फिर ना वह बुबूआ मुझे ऐसे देखता है मुँह उठाकर जैसे हमारा वह छोटा-सा भोटिया कुत्ता नहीं था, ...जैसे मुझे उस कुत्ते की नाक पर आता था ना लाड़ और गुस्सा, वैसा ही इस पर आता है।''[27]

उपर्युक्त शब्द-चित्र वयसन्धिकाल से गुज़र रही एक युवती का है, जिसे अभी 'यौन' का अनुभव नहीं है, लेकिन उसके यौन अंग का विकास स्पष्ट हो रहा है। उसके 'स्तन' में उभार की प्रक्रिया आरंभ हो गयी है। वह उत्सुक है उस नवागत को लेकर, वह उसे बहुत-सारे नाम देती है। उसकी तुलना भोटिया कुत्ता के नासिका से करती है। स्पर्श के एहसास को वह बार-बार महसूस करती है। स्नान के समय, और अपने बुबूआ पर ठीक वैसे ही अँगूठा रख देती है, जैसे पहले किसी ने रखा था। वह स्तन के उभार के साथ ही अनजाने में मातृत्व के बोध को भी महसूस करती है –अपने बुबूबा में उसे बबुआ का एहसास होता है, उस पर लाड़ एवं लाड़मय गुस्सा करती है। ध्वनि साम्य का इसमें बेजोड़ प्रयोग है – स्तन से लफड़-लफड-फदड़-फदड़ की ध्वनि का निकलना.....।

''सुबह की किरण ने जैसे ही सोनसी को छुआ सोनसी गहरी नींद के बाद भी जाग गई। सुबह की

किरण ने झकझोर कर सोनसी को छुआ था।''[28] सुबह की किरणों का झकझोर कर सोनसी का जगाना में, किरणों का मानवीयकरण किया गया है। तेज़ी से झकझोरना हाथ द्वारा ही होता है। यहाँ सूर्य की किरणें हाथ की तरह है, जो नींद से अलसायी सोनसी को जगा रही है।

'मिथक' शब्द अंग्रेज़ी के 'मिथ' से बना है। भारतीय साहित्य में इसके समानार्थी शब्द हैं – दंतकथा, पुरावृत्त, धर्मगाथा, पुराख्यान। बच्चन सिंह इसे पारिभाषित करते हुए लिखते हैं –'' 'मिथ' यूनानी 'माइथोस' से निकला है। माइथोस का अर्थ है – अतर्क्य आख्यान। माइथोस का विलोम है – 'लागोस' यानी तार्किक संलाप। मिथक में तर्क की कोई संगति नहीं होती। इसमें व्यक्त भावनाओं, विचारों और घटनाओं के संबंध-सूत्र अत्यधिक उलझे हुए तर्केतर और गड्डमड्ड होते हैं। .....मिथक आदिम मनुष्य की भाषा है जिसके माध्यम से वह जीवन और प्रकृति के रहस्यों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को अलौकिक गाथाओं के रूप में अभिव्यक्त करता है। यह आदिम यथार्थ के प्रति सामूहिक अचेतन मन का सहजस्फूर्त बिम्बात्मक सृजन है।''[29]

हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रणीत ***'अनामदास का पोथा'*** की रचना का आधार मिथक है। 'रैक्व' प्राचीन काल के ऋषि थे – सम्पूर्ण तत्वज्ञान में प्रवीण। लेकिन यह विडम्बना ही है कि जगत् एवं जीव के रहस्य को सुलझाने वाला 'रैक्व' जगत की व्यावहारिता से अनभिज्ञ है। 'प्रेम' के बोध से अलग है। 'रिश्ते' का उसे एहसास नहीं। वह कोरा शास्त्रज्ञाता है। व्यावहारिक जगत के सम्पर्क में आकर वह अपनी शिक्षा पूरी करता है।

'दिव्या' एक कल्पनाप्रसूत ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका इतिहास में कोई साक्ष्य नहीं मिलता है। रचनाकार ने अपनी कल्पना एवं रचना प्रतिभा के बल पर इसे गढ़ा है। 'स्त्री' के व्यक्तित्व पर केन्द्रित इस उपन्यास में 'स्त्री' की विडम्बनाओं का चित्रण है – उसे इतिहास के क्रम में रखकर। 'स्त्री' पुरुष की भोग्या है, उपभोग की वस्तुमात्र है। इस मिथक को दिव्या अपने संकल्प द्वारा तोड़ती है।

'कसप' उपन्यास में शिव-पार्वती के प्राचीन मिथक के सहयोग से उपन्यासकार बेबी एवं डी. डी. के प्रेम को इतिहास एवं परम्परा द्वारा प्रमाणित करवाने का प्रयास करता है। डी. डी. पूर्णतः 'लाटा' है – ''मध्यवर्गीय प्रेमकथा में मिथक-पुराण और धर्म घसीट लाने की घृष्टता के लिए आप मुझे धिक्कारें। किन्तु शास्त्रियों की यह बेटी उस डी. डी. को लाटे की संज्ञा दे चुकी है और लाटा मिथक में कोई है तो शिव ही। .....इस लाटे को भीषण रूप से अयोग्य ठहरा रहे हैं बेबी के लिए, तो यह भी मिथक-सम्मत बात ही है। सुनयना और सुनयनों को कितना कष्ट हुआ था भोला भण्डारी वर महोदय को देखकर.....''[30]

'मिथक' न केवल व्यक्तित्व विशेष से संबंधित होता है जो ऐतिहासिक हो, बल्कि विचार, आख्यान, गाथा से भी संबंधित होता है। 'मिथ' ऐतिहासिक होने के साथ-साथ वर्तमान में भी निर्मित होता है। ***'दीवार में एक खिड़की रहती थी'*** उपन्यास में उस व्यक्ति की कथा है जो इतिहास से परे जाकर जीता है। वह अपने मूल से अत्यधिक जुड़ाव महसूस करता है तभी वह स्त्री-पुरुष जब भी मौक़ा मिलता है खिड़की से कूदकर वन प्रातंर के एकांत में खो जाते हैं। दुनिया के शोर-शराबे से दूर। ''तालाब से डूबकी लगाकर दोनों निकले और अपने-अपने शरीर में और फिर एक-दूसरे के शरीर में मिट्टी को मला। दोनों तालाब में पैर डालकर कुछ देर बैठे रहे। गीली मिट्टी को लपेटे हुए वे मनुष्य जाति का आदिम जोड़ा लग रहे थे।''[31] विकसित एवं उपयोगितावादी संस्कृति से दूर, रघुवर प्रसाद एवं सोनसी, उस आदिम जोड़े की तरह लग रहे हैं, जो प्रकृति के प्रागंण में स्वच्छंद एवं संतुष्ट होकर विचरण कर रहे हैं। वे अपने मन की सुनते हैं और मन की ही करते हैं। उन पर किसी प्रकार की कोई बाह्य प्रभाव या दबाव नहीं है। 'साधु' भारतीय संस्कृति का मिथक है। वह ग्राम्य जीवन से दूर अरण्यवासी होता है – राग-द्वेष से परे। रचनाकार इस साधु के माध्यम से रघुवर दास को प्रकृति एवं भारत के प्राचीन परम्पराओं से भी जोड़ता है।

सूरज का सातवाँ घोड़ा, कसप, हमज़ाद मरीचिका, एक चूहे की मौत, कलि कथा : वाया बाइपास आदि उपन्यासों में किसी-न-किसी मिथक को आधार बनाया गया है, तथा नये मिथकों की रचना भी की गई है।

रूपक

'रूपक' अंग्रेज़ी के 'मेटाफर' का पर्याय है। यह कविता में बहुप्रयुक्त अलंकार का एक भेद है। नित्यानंद तिवारी इसे पारिभाषित करते हैं – इस अलंकार में लक्षण से चमत्कार घटित होता है। इसमें उपमेय पर उपमान का आरोप होता है। उपमेय और उपमान दोनों की एकरूपता प्रदर्शित करना इस अलंकार का मुख्य धर्म है।''[32] इसे इस उदाहरण से समझ सकते हैं – 'अम्बर-पनघट में डुबो रही तारा-घट-ऊषा नागरी' में अम्बर में पनघट, तारा में घट तथा ऊषा में नागरी का आरोप किया गया है।

'कविता' की आँख से 'कथा' का दर्शन कथा को गद्य की कविता मानने के समान है। बिम्ब, प्रतीक, रूपक आदि का स्वरूप कथा में हू-ब-हू नहीं होता है जैसा कि कविता में होता है। दोनों विधाओं की माँग एवं स्वरूप में अंतर है। कविता अपने सीमित स्वरूप में व्यापक अर्थ की सृष्टि करती है तो उपन्यास अपने व्यापकत्व के अनुरूप विस्तार में व्यक्त होता है। कहने का आशय यह है कि कविता का रूपक, उपन्यास के रूपक से भिन्न होता है।

''पंडित सबरजीत चौबे को रामलला ने सपने में कहा है – मिसर खान्दन अब जै-पन्थी के रास्ते पर है। यानी चींटी को अब पंख लगा है। इसीलिए पुरानी चक्कर परती को तोड़ने पर तुला हुआ है। .....मंगल के दिन सुबह नहा-धोकर ठाकुरबाड़ी में बाल-बच्चा सहित जमा हो जाओ। परती तोड़कर गौ माता के पेट पर छुरी चला रहा है जित्तन! ....बाँ-आँ-आँ-आँ! हँसने की बात नहीं। यह हमारी भूखी गौमाता की आवाज़ है। दुख से छटपटाती हुई गैया विलाप कर रही है – बाँ-आँ-आँ! यही हमारा नारा है! जितनी बार हम लोग मिलकर यह नारा लगायेंगे,

उतनी बार जित्तन के सिर पर गौहत्या का पाप सवार होगा। ....लगाइए नारा बाँ-आँ-आँ-आँ, बाँ-आँ-आँ-आँ!''[33]

यहाँ 'धरती माता' पर 'गौ माता' का आरोपन है। दोनों समानगुणधर्मी है – धरती माता मनुष्य को धारण करती है, उसे जीवित रहने में सहायक होती है। जमींदार परम्परा तोड़ रहा है। वर्षों पुरानी परती भूमि को तोड़कर उसमें 'राग' भरना चाहता है, रसमय करना चाहता है। जीवंत कर, उसमें हरियाली लाने का स्वप्न देखता है। पुराने जड़ हो चुकी ब्राह्मण व्यवस्था को बदलना चाहता है। उसके विरोध में उस व्यवस्था के पुरोधा उठ खड़े होते हैं। लोगों का आह्वान करते हैं गौमाता की सौगन्ध देकर प्रगतिशील जित्तन को ईश्वरीय व्यवस्था का हत्यारा सिद्ध करने के लिए, ठाकुरबाड़ी में इकट्ठा होकर राजनीतिक नारा लगाते हैं। नारा भी बेजोड़ ''बाँ-आँ-आँ-आँ''! यानी स्वयं सभी 'गौ' के गुण को धारण करते हैं, गौमय होकर ''बाँ-आँ-आँ-आँ'' करते हैं। इस तरह का विरोध एक नयी बात है। रचनाकार इसे प्रामाणिक बनाने के लिए 'पंडित' को आगे लाता है क्योंकि 'गौ' की दैवीय रूप ब्राह्मण व्यवस्था की ही देन है। प्राचीन एवं आधुनिक का अद्‌भुत मेल है यहाँ। विरोध भी व्यापक आधार लिए हुए है, क्योंकि इसमें बच्चे भी हैं। पंडित समुदाय इस विद्रोह को दमदार बनाने के लिए सबको आह्वान करता है – यहाँ कोई भेद नहीं, अंतर मिट गया है। अब पहली वाली बात नहीं आधुनिकता के कारण पंडित का आह्वान, 'ब्रह्म वाक्य' नहीं माना जाता है। यह परिवर्तन की एक झलक है – पुरानी व्यवस्था से मुक्त होकर आधुनिकता को अंगीकार करने का।

'उपन्यास' में शैल्पिक वैशिष्ट की अन्विति के अन्य आधार हो सकते हैं। जैसे निरीक्षण, फोटाग्राफ़ी, सिनेमाई इत्यादि। ***'एक चूहे की मौत'*** उपन्यास की शैली विवरणात्मक हैं पूरा-का-पूरा उपन्यास एक वर्णन जैसा है। वह ब्यौरों एवं बयान पर आधारित कथा है। मनुष्य के आंतरिक जगत का चित्रण न होकर उसमें उसके बाह्य परिवेश का चित्रण अधिक है। कहीं-कहीं लगता है कि उपन्यासकार अख़बार के लिए रिपोर्ट लिख रहा है : –

''ये बैठकें बड़ी महत्त्वपूर्ण होती थीं और तमाम बड़े चूहेमारों के लिए इनमें भाग लेना बहुत आवश्यक था। इनमें चूहे मारने के काम की प्रगति का मूल्यांकन किया जाता, चूहे मारने की गति को तेज़ करने के उपाय सोचे जाते और चूहे मारने के और भी कारगर तरीक़े निकालने के लिए विचार-विमर्श किये जाते। इन बैठकों में बड़े चूहेमारों का काफ़ी समय लग जाता था। और वे जब अपने कमरों में लौटते तो चूहों के पहाड़ खड़े दिखाई देते। इन चूहों से निपटने के लिए वे अपनी शामें बरबाद नहीं कर सकते थे। खिदमतगार चूहों को ट्रंक में बंद करके उनके घर पहुँचा देते।''[34]

अध्ययन का उद्‌देश्य

अभिव्यक्ति की परंपरागत विधि से जटिल संसार को सृजित करना असंभव था, इस शैली से मनुष्य के जीवन का बाह्यरुपायित नहीं हो पा रहा था। इस स्थिति में एक नई कथा शैली को अपनाया गया जिसने मनुष्य के आंतरिक एवं बाह्य संसार को पूर्ण सत्यता से अभिव्यक्त करने में सक्षम है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से लगता है कि कोई पत्रकार नगरनिगम की बैठक से लौटकर आया हो और अपनी रिपोर्ट सम्पादक को सौंप रहा है। लेकिन इस 'रिपोर्ट की शैली' में रचनाकार ने वर्तमान कार्य-कलाप पर गंभीर टिप्पणी करता है। उनके ख़िदमतगारों द्वारा ट्रंक में भर-भर कर चूहे पहुँचाए जाते हैं – एक नये अर्थ की सृष्टि करता है। अधिकारी इन चूहों के चक्कर में अपनी मौज़-मस्ती भरी शाम को वे बरबाद नहीं करना चाहते हैं। रचनाकार इसके माध्यम से उनकी संवेदनहीनता एवं उत्तरदायित्वहीनता को दिखाना चाहता है।

अन्य आधारों में फोटोग्राफ़ी एवं सिनेमाई तकनीक को ले सकते है। फोटोग्राफ़ी में स्थिर चित्र होता है और सिनेमाई तकनीक में चलते-फिरते चित्र। इसका प्रयोग ***'कसप'*** में बख़ूबी किया गया है। – ''हमारा नायक रोते-रोते ही उठ खड़ा हुआ इस बीच। दोनों हाथ सूर्य की ओर पसारे खड़ा है वह निर्भय, बाहर को निकली हुई एक चट्टान पर। वह चाहता है कि शॉट यहाँ फ्रीज़ कर दिया जाये.....।''[35]

अंत टिप्पणी

1. *अपना मोर्चा, पृ.12*
2. *अनामदास का पोथा, पृ.51*
3. *दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ.121*
4. *कविता की तीसरी आँख, प्रभाकर श्रोत्रिया, 'रचनात्मक भाषा : बदलते संदर्भ', पृ.10*
5. *प्रो. गंगाप्रसाद विमल से विमर्श–क्रम में*
6. *परती परिकथा, पृ.182*
7. *अनामदास का पोथा, पृ.87*
8. *हमज़ाद, पृ.128*
9. *दिव्या, पृ.107*
10. *परती परिकथा, पृ.333*
11. *आजकल, जुलाई– 1996, पृ.23*
12. *साक्षात्कार, सितम्बर, 1999, पृ.103, 104*
13. *बिमल उर्फ़ जाए तो जाएं कहा, पृ.– 79*
14. *नर नारी, पृ.123*
15. *इण्डिया टूडे, हिन्दी,*
16. *काव्य–बिम्ब, NBT दिल्ली, 1976, पृ.7, 8*
17. *आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ.69*
18. *कविता की तीसरी आँख, पृ.37*
19. *मछली मरी हुई, पृ.67*
20. *मुर्दाघर, पृ.145*
21. *मुर्दाघर, पृ.59, 60*
22. *वही, पृ.204*
23. *दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ.52*
24. *कविता की तीसरी आँख, पृ.23*
25. *साहित्य का स्वरूप, NCERT, पृ.68*
26. *अपना मोर्चा, पृ.12*
27. *कसप, पृ.157, 158*
28. *दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ.95*
29. *आलोचना के बीज शब्द, पृ.82, 83*

30. *कसप, पृ.120*
31. *दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ.58*
32. *साहित्य का स्वरूप, पृ.55*
33. *परती परिकथा, पृ.116, 117*
34. *एक चूहे की मौत, पृ.96*
35. *कसप, पृ.338*

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *अपना मोर्चा, पृ.12*
2. *अनामदास का पोथा, पृ.51*
3. *दीवार में एक खिड़की रहती थी, पृ.121*
4. *कविता की तीसरी आँख, प्रभाकर श्रोत्रिया, 'रचनात्मक भाषा : बदलते संदर्भ', पृ.10*
5. *प्रो. गंगाप्रसाद विमल से विमर्श–क्रम में*
6. *परती परिकथा, पृ.182*
7. *अनामदास का पोथा, पृ.87*
8. *हमज़ाद, पृ.128*
9. *दिव्या, पृ.107*
10. *आजकल, जुलाई– 1996, पृ.23*
11. *साक्षात्कार, सितम्बर, 1999, पृ.103, 104*
12. *बिमल उर्फ़ जाए तो जाएं कहा, पृ.– 79*
13. *नर नारी, पृ.123*
14. *इण्डिया टूडे, हिन्दी,*
15. *काव्य–बिम्ब, NCERT दिल्ली, 1976, पृ.7, 8*
16. *आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ.69*
17. *मछली मरी हुई, पृ.67*
18. *मुर्दाघर, पृ.145*
19. *साहित्य का स्वरूप, NCERT, पृ.68*
20. *अपना मोर्चा, पृ.12*
21. *कसप, पृ.157, 158*
22. *आलोचना के बीज शब्द, पृ.82, 83*
23. *एक चूहे की मौत, पृ.96*